लोक साहित्य
विनोद कुमार वर्मा

छत्तीसगढ़ी भाषा के समृद्धि में डा. शेष के भूमिका

डा. शंकर शेष ने हिन्दी साहित्य के साथ ही साथ छत्तीसगढ़ी भाषा के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। छत्तीसगढ़ी शताब्दियों से एक लोक भाषा रही है और उसमें साहित्य सृजन की गौरवशाली परम्परा भी बनी हुई है। डा. शंकर शेष ने जहां भारतीय आर्य भाषाओं में छत्तीसगढ़ी का स्थान शीर्षक से पुस्तक का प्रणयन किया, वहीं उनकी हस्तलिखित पांडुलिपि छत्तीसगढ़ी का

भाषाशास्त्रीय अध्ययन का प्रकाशन वर्ष 2010 में छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी ने किया। ग्रियर्सन और धमतरी के व्याकरणाचार्य काव्योपाध्याय हीरालाल तथा बिलासपुर के व्याकरणाचार्य जगन्नाथ प्रसाद भानू की परंपरा को गतिशील बनाने वालों में डा. शंकर शेष का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। छत्तीसगढ़ी को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में अनेक मनीषियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उनमें से एक नाम डा. शंकर शेष है। आपका मानना था कि भाषा कोई भी हो, वह अपनी जमीन से उपजती है और पनपती है। हर भाषा समय के साथ अपना रंग रूप बदलती है। विश्व की अनेक जनजातीय बोलियां अत्यंत तेजी से विलुप्त हो रही है, उसका कारण यह है कि उनमें समय के अनुरूप बदलाव नहीं आया। वस्तुतः इसका परिणाम यह है कि आज छत्तीसगढ़ी भाषा संक्रमण के दौर से गुजर रही है, खासकर छत्तीसगढ़ी गद्य साहित्य में अराजकता की स्थिति है, ऐसे ऐसे नए शब्द बनाए और लिखे जा रहे हैं जो बोली ही नहीं जा नहीं जाती। वास्तव में जो बोली जाती है वही भाषा है।

ऐतिहासिक
ध्रुव सिंह ठाकुर ' कोटमिहां '

छत्तीसगढ़ में राणा प्रताप के वंशज

आज ले चार सौ साल पहिली दिल्ली के मुगल सम्राट अकबर के शासन रीहिस। वोह सेना भेज के छोटे राजा मन ल गुलाम बना ले। अकबर ह अपन सेनापति मान सिंह ल राणा प्रताप ल गुलामी स्वीकार करे ल कीहिस। राणा प्रताप कोनो भी शर्त में गुलामी स्वीकार नी करिस। ओहि बीच विधि के विधान ले बड़ तकलीफ झेलिस राणा

प्रताप हा। ओहि बीच मेवाड़ के बेपारी भामाशाह ह अकबर ले लड़े बर राणा प्रताप के पूरा सहायता करीस। राणा प्रताप अपन पांच हजार सेना ले के चित्तौड़ में हमला कर दिस। अकबर डहन ले मानसिंह सेना ले के लड़ई करिस। बिक्कट लड़े के बाद महाराणा प्रताप हा जीतत चित्तौड़ के किला ल छोड़के सब किला ल जीत लिस। ए लड़ई में महाराणा प्रताप के घोड़ा जेकर नाव चेतक रीहिस, वोकर भूमिका महत्वपूर्ण रीहिस। अपंग होय के बाद घालव अपन आखिरी सांस तक राजा ल लड़ई में सहयोग करे में कोनो कमी नी करिस। समे बदलीस, महाराणा प्रताप के वंशज मन देश भर में बगरगे। एकर संग कतको मन छत्तीसगढ़ में आके बसगे। इहा एमन ल राजपूत क्षत्रिय कहे जाथे। एमन अपन क्षत्र धरम के पालन करत कमजोर, असहाय मन ल नियाव देवाथे। छत्तीसगढ़ में कई जगा राणा प्रताप के मूरती लगे हे। बिलासपुर अऊ रायपुर समेत कई जगा में राणा प्रताप के जयंती के दिन बड़का जुलूस निकाल के वोकर वीरता, शौर्यता के सुरता करे जाथे। छत्तीसगढ़ के राजपूत क्षत्रिय मन अपन पुरखा के क्षत्र धरम ल अभी तक निभावत हे।

पुस्तक समीक्षा

ठग अऊ जग

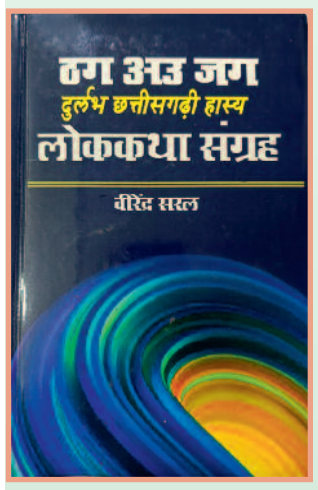

कृति के नाव
ठग अऊ जग

लेखक
वीरेन्द्र सरल

प्रकाशक
कल्पना प्रकाशन नई दिल्ली

पुस्तक समीक्षा
डा परदेशी राम वर्मा

मूल्य
चार सौ पचास रुपए

छत्तीसगढ़ी लोककथाओं के संग्रह का प्रकाशन हुआ। इसमें छत्तीसगढ़ के प्रतिभाशाली रचनाकारों के द्वारा शब्दांकित लोक कथाएं हैं। इसके संपादन का दायित्व मुझे मिला। उस दायित्व को पूरा करने के लिए छत्तीसगढ़ी लोककथाओं के विराट संसार को झांककर फिर फिर देखने का अवसर मिला। मेरे द्वारा संपादित छत्तीसगढ़ की लोककथाएं देश के अन्य प्रान्तों की लोककथाओं की सिरीज का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस किताब की विशेषता है कि इसमें दुर्लभ छत्तीसगढ़ी हास्य लोककथाएं बत्तीस लोककथाएं हैं।छत्तीसगढ़ी लोककथाओं के विराट संसार से वीरेंद्र सरल ने हास्य कथाओं को अपने ढंग से नए अंदाज में लिखा है। पीढ़ियों से लोककथाएं श्रुति परंपरा से जीवित रहीं। आज वही दादा दादी नानी नाना से सुनी हुई लोककथाएं कल्पनाशील लेखकों के द्वारा शब्दांकित होकर संग्रह के रुप में नई पीढ़ी तक पहुंच रही है। मनोरंजन के अपार विपुल साधनों के इस युग में भी लोककथाएं लिखी और पढ़ी सुनी सुनाई जा रही है।

छत्तीसगढ़ अंचल के सरगुजा तहसील अंबिकापुर अंतर्गत आने वाले गांव पुहपुटरा, लखनपुर, केनापार आदि में लोक एवं आदिवासी जातियों द्वारा अभ्यास की जाने वाली भित्तिचित्र ऐसी लोक कला है जो गांव की महिलाओं द्वारा कच्ची मिट्टी से बनी झोपड़ियों की दीवारों पर गोबर, चॉक मिट्टी से बनाई जाती है। इस क्षेत्र में फसल कटाई, ऋतु परिवर्तन, धार्मिक अवसरों पर अपने इष्ट देव के प्रति आस्था और मान्यताओं के अनुसार दीवारों की कलाकृतियों में निरन्तर नवीन कलाकृतियां देखने को मिलती हैं।

हर वर्ष बनाए जाते हैं सरगुजा
अंचल में भित्तिचित्र

मनेंद्रगढ़, चिरमिरी, भरतपुर के कई ग्रामों में भी ऐसी ही नवीन कलाकृतियां देखने को मिलती हैं। कहीं रक्षाबंधन में भाई की कलाई में राखी बांधती बहन दिखाई देती हैं तो कहीं वन्य जीव दिखाई देते हैं। दिवाली के समय जनजातियों द्वारा भित्ति चित्रों की सजीव कलाकृतियां बनाई जाती हैं। ऐसे समय कहीं भगवान राम के 14 वर्ष के वनवास काल के बाद अपने राज्य वापसी का सुखद एवं उल्लासपूर्ण स्मृतियों को भी कलाकृतियों से सजाई जाता है कहीं जलते दीप, कहीं धान की बालियों की कलाकृतियां बनाई जाती हैं। इन कलाकृतियों के पीछे मूल कारण में घर की सुख समृद्धि की कामना होती है। दीवारों पर बनाई इन कलाकृतियों में पास पड़ोस का अति परिचित संसार अपने सामाजिक विश्वासों की ओर मूल संस्कारों की अकुंठित, सरल और आडम्बरहीन अभिव्यक्ति है। सुदूर आदिवासीय क्षेत्रों में जहां कि सजावट आदि के साधन अपर्याप्त होते थे, लोग वहां प्रचलित विभिन्न त्योहारों व धार्मिक अवसरों के समय अपने घरों की सज्जा हेतु दीवारों में कच्ची मिट्टी द्वारा पेड़ पौधों , पशु पक्षियों आदि की आकृतियां बना कर व उनमें बहुत ही मनोरम रंगों से रंग कर अपने घरों को आज भी सजाते हैं।

ग्रामीण भित्तिचित्र परंपरागत प्राचीन कलाओं का जीवंत दस्तावेज है। दीवारों पर बने इन चित्रों का संदेश बहुत व्यापक होता है। भित्ति चित्रों की कुछ झलक प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों से भी मिलती जुलती है। आदिवासी समुदायों में इस चित्र को काफी पवित्र माना जाता है, इसमें उनकी आस्था और मान्यता जुड़ी होती है इन्हीं भित्तिचित्रों में उनकी पारंपरिक जीवन शैली और लोक परंपरा का स्वरूप उभर कर सामने आता है।

परंपरा : सतीश उपाध्याय

धार्मिकः कमल नारायण

देवसील में आज भी रामायणकालीन प्रमाण देखे जा सकते हैं

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम के दंडकारण्य और दक्षिण कोसल से संबंधित अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनके जनश्रुति के अनुसार सीतामढ़ी -कनवाई आज देवसील के नाम से विख्यात है। इसी क्षेत्र में मनेंद्रगढ़, चिरमिरी, भरतपुर जिले में हरचौका धाम के छतौड़ा आश्रम में कुछ समय बिताए और दक्षिण भारत के रामेश्वर धाम की तर्ज पर अपनी आध्यात्मिक शक्ति के अनेक प्रमाण उजागर किए। उस काल में छतौड़ा को शिक्षा का विशेष केंद्र माना जाता था। छतौड़ा जनकपुर से 35 कि मी दूर कोटाडोल मार्ग पर है। इन गुफाओं के भित्तिचित्रों के अवशेष शिक्षा के प्राचीन अध्याय की कहानी है। यह स्थल त्रेता युग में ऋषि मुनियों और तपस्वियों का सर्वाधिक पसंदीदा स्थल रहा है। सीतामढ़ी का कनवाई क्षेत्र ही देवशील है । इसी स्थान पर घने जंगल में सिद्ध बाबा आश्रम स्थापित है। चट्टानों से निर्मित सिद्ध बाबा आश्रम के पास तीन चार फीट ऊंची दी की बांबी है। आध्यात्मिक शांति के लिए पर्यटक इस स्थान पर अवश्य आते हैं। मानी जाती है कि माता सीता जब सीतामढ़ी में रसोई में भोजन तैयार करती थीं तब देवता भी भोजन ग्रहण करते थे। इसी परम्परा के अनुसार आज भी देवताओं को यहां प्रसाद चढ़ाने की परंपरा है। आज यह स्थान पूरी तरह आध्यात्मिक और धार्मिक महत्व का स्थल बन चुका है।

आस्था
सतीश शर्मा

अपार श्रद्धा है गढ़भेड़ा बाबा में

जिला धमतरी राष्ट्रीय राजमार्ग क्र 43 के कोड़ेबोड़ और बिरेझर से 5-5 कि मी पूर्व दिशा में ग्राम सिररी के पास स्थित है। गढ़भेड़ा तालाब के ऊंचे टीले में गढ़भेड़ा बाबा का मठ बना हुआ है। इस बाबा के सम्बन्ध में कई किंवदंती प्रचलित हैं। जिसके अनुसार बहुत पहले गांव के तालाब के ऊंचे टीले पर एक महात्मा आया और उस टीले के ऊपर समाधि लगा कर बैठ गया। वह महात्मा हमेशा साधना में लीन रहता था। कालान्तर में वह महात्मा समाधिस्ट हो गया। तब इस बाबा के नाम से तालाब और गांव की महत्ता बढ़ती चली गई। बाबा के अनेक चमत्कार की घटनाएं भी गांव के बुजुर्ग बताते रहे हैं। बाबा के इस स्थल पर मठ का स्वरूप दिया गया है। भक्तों का इस मठ में आना जाना लगा रहता है। भक्तों का मानना है कि बाबा पीड़ितों की मनोकामना पूरी करते हैं। 90 के दशक से कार्तिक पूर्णिमा के दिन बाबा के इस स्थल पर विशाल मेला भरता है। आसपास के

इस स्थल पर अनेक बड़े औषधीय पेड़ो का रोपण किया गया है जिससे यहां का वातावरण रमणीय और हरा भरा लगता है। यह तालाब अब पूरी तरह से धार्मिक स्थल का रूप ले चुका है, क्योंकि वर्ष भर धार्मिक आयोजन होते रहते हैं। दूर दूर से भक्त गण बाबा का आशीर्वाद लेने यहां पहुंचते रहते हैं। इसके साथ ही देवी देवताओं के मंदिर भी इस तालाब के किनारे देखे जा सकते हैं। भक्तों की आस्था बढ़ने से इस स्थल पर धार्मिक क्रियाकलापों से संबंधित कुछ न कुछ निर्माण कार्य होते ही रहते हैं। ग्राम के कुल देवता के रूप में भी ग्रामीणों की मान्यता है।

लेखकों से..

छत्तीसगढ़ की लोक कला, लोक साहित्य, पर्यटन, तीज त्योहार, गांव की कहानी, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, शैलचित्र, भित्तिचित्र, कला कृति और पुरखा के सुरता के साथ ही सम सामयिक विषयों पर अधिकतम 500 शब्दों पर लेख भेजें- **Choupalharibhoomi@gmail.com**

संस्कृति
बागेश्वर पात्र

हल्बा समाज में सुख चिवड़ा का महत्व

हल्बा समाज के उत्पत्ति का सम्बन्ध महाभारत के प्रसंग रूक्मणी हरण से भी जोड़ा जाता है। रूक्मणी हरण के समय जिन योद्धाओं ने बलराम के पक्ष में युद्ध किया था, वे बलराम के प्रिय अस्त्र हल को धारण करने लगे। हल वाहक होने के कारण यह शब्द बाद में कुछ सुधार के साथ अपभ्रंश के रूप में हल्बा में परिवर्तित हो गया। हल और बाहना से हल्बा उत्पत्ति कृषि कार्य में हल की उपयोगिता और चिवड़ा के पारंपरिक उपकरण बाहना से मिलकर हल्बा शब्द का निर्माण हुआ है। हल्बा मूलतः कृषक जनजाति है। अत्यधिक अन्न उत्पादन से शेष बचे धान को हलबिन महिलाएं उबालकर हांडी में धीमे आंच में तपाकर मूसल और चाटू की सहायता से बाहना में कुटती हैं। इस प्रक्रिया में चिवड़ा उत्पादित होता है। इस चिवड़ा को हल्बा जाति की महिलाएं बाजार में बेचकर घर परिवार की अर्थ व्यवस्था में योगदान देती हैं। चिवड़ा

कूटना हल्बा जाति की महिलाओं का पारंपरिक व्यवसाय है। बस्तर के हल्बा जनजाति में सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में सुख चिवड़ा का महत्वपूर्ण योगदान है। यहां हल्बा समाज के अलावा अन्य समाजों में भी मांगलिक कार्य विशेषकर माहला (सगाई), विवाह के विभिन्न रस्म पूरे होने के पश्चात चिवड़ा गुड़ देने का रिवाज है। चिवड़ा गुड़ ने बस्तर के सभी समाजों को एक सूत्र में पिरोकर सामाजिक सदभाव में मिठास घोलने का काम सदियों से किया है। इसलिए बस्तर में इसे सुख चिवड़ा के नाम से जाना जाता है। सरगी ' साल ' पत्तों के दोनों में चिवड़ा के साथ गुड़ मिलाकर देने का सांकेतिक अर्थ रस्म विशेष की पूर्णता को बयान करता है।बस्तर के कुछ क्षेत्र विशेष में मुरिया गोंड समाज के लोग नवाखानी पर्व के अवसर पर हलबिन महिला के हाथ का बना चिवड़ा ही अपने कुल देवता में अर्पित करते हैं।